1940C Jainism is a natural religion

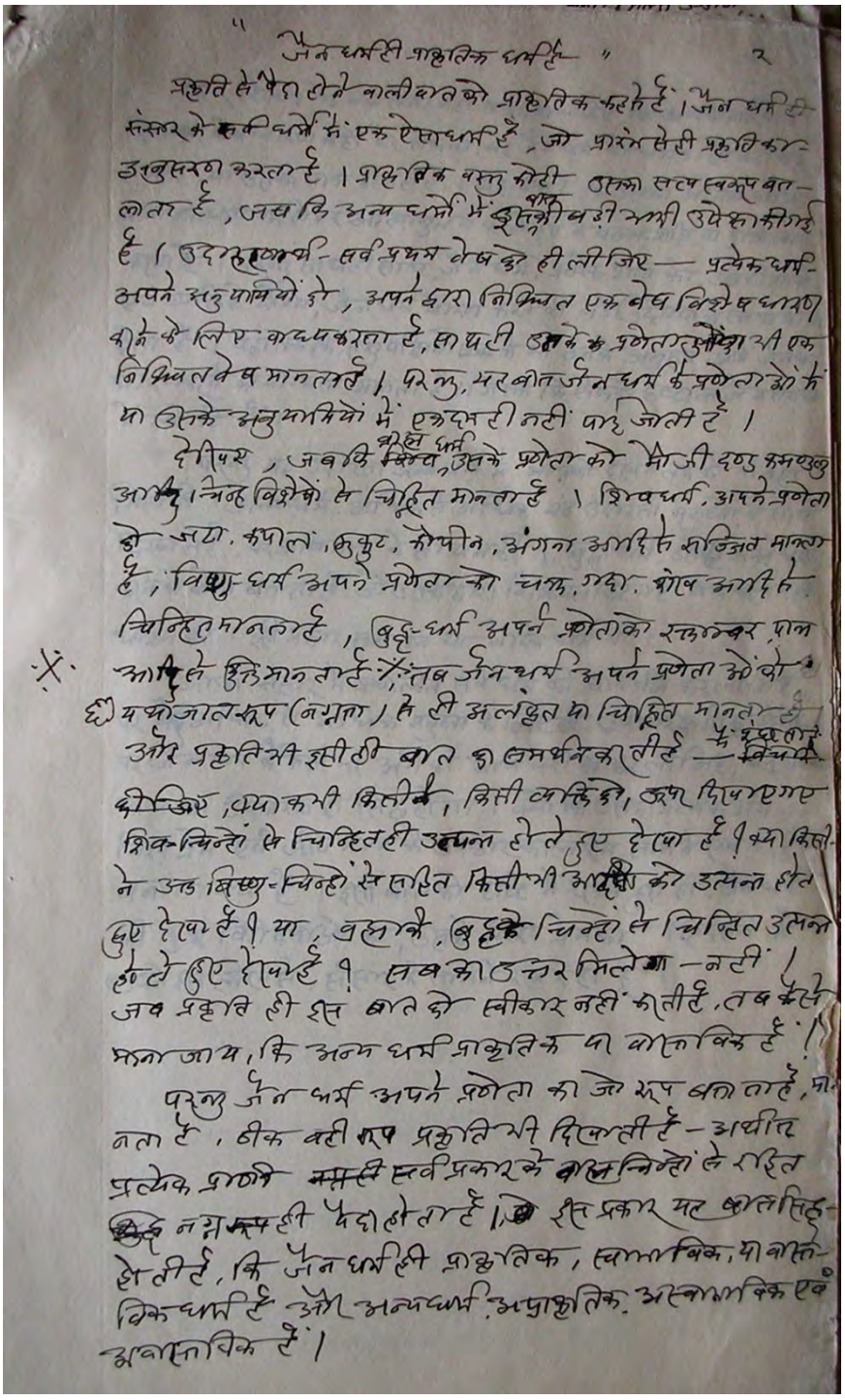

"जैन धर्म ही प्राकृतिक धर्म है"

प्रकृति से पैदा होने वाली बात को प्राकृतिक कहते हैं। जैन धर्म ही संसार के सब धर्मों में एक ऐसा धर्म है, जो प्रारंभ से ही प्रकृति का अनुसरण करता है। प्राकृतिक वस्तु को ही उसका सत्य स्वरूप बतलाता है, जब कि अन्य धर्मों में इसकी बहुत बड़ी भारी उपेक्षा की गई है। उदाहरणार्थ - सर्व प्रथम वेश को ही लीजिए — प्रत्येक धर्म अपने अनुयायियों को, अपने द्वारा निश्चित एक वेष विशेष धारण करने के लिए बाध्य करता है, साथ ही उनके प्रणेताओं का भी एक निश्चित वेष मानता है। परन्तु, यह बात जैन धर्म के प्रणेताओं में या उनके अनुयायियों में एकदम ही नहीं पाई जाती है।

देखिए, जबकि बौद्ध धर्म, उसके प्रणेता को मौंजी दण्ड कमण्डलु आदि चिन्ह विशेषों से चिह्नित मानता है। शिवधर्म, अपने प्रणेता को जटा, कपाल, मुकुट, कौपीन, अंगना आदि से सज्जित मानता है, विष्णु-धर्म अपने प्रणेता को चक्र, गदा, शंख आदि से चिन्हित मानता है, बुद्ध-धर्म अपने प्रणेता को रक्ताम्बर, पात्र आदि से चिन्हित मानता है; तब जैन धर्म अपने प्रणेताओं को यथाजातरूप (नग्नता) से ही अलंकृत या चिन्हित मानता है और प्रकृति भी इसी ही बात का समर्थन करती है — देखिए लीजिए, क्या कभी किसी ने, किसी बालक को, ऊपर दिए गए शिव-चिन्हों से चिन्हित ही उत्पन्न होते हुए देखा है? क्या किसी ने अब विष्णु-चिन्हों से सहित किसी भी आदमी को उत्पन्न होते हुए देखा है? या, ब्रह्मा के, बुद्ध के चिन्हों से चिन्हित उत्पन्न होते हुए देखा है? सब को उत्तर मिलेगा — नहीं! जब प्रकृति ही इस बात को स्वीकार नहीं करती है, तब कैसे माना जाय, कि अन्य धर्म प्राकृतिक या वास्तविक हैं!

परन्तु जैन धर्म अपने प्रणेता का जो रूप बताता है, मानता है, ठीक वही प्रकृति भी दिखाती है — अर्थात् प्रत्येक प्राणी सर्व प्रकार के चिन्हों से रहित नग्न ही पैदा होता है। इस प्रकार यह बात सिद्ध होती है, कि जैन धर्म ही प्राकृतिक, स्वाभाविक, या वास्तविक धर्म है और अन्य धर्म अप्राकृतिक, अस्वाभाविक एवं अवास्तविक हैं।

ॐ

श्री वीतरागाय नमः

२ नाम में भी उदारता

"१ जैन धर्म ही विश्वधर्म या सार्वधर्म है"

आज संसार में जितने भी धर्म प्रचलित हैं, वे सब किसी न किसी पुरुष विशेष के नाम से ही प्रचलित दिखाई देते हैं। जैसे विष्णु से प्रतिपादित धर्म को — वैष्णव धर्म, शिव से प्रतिपादित धर्म को शैव धर्म, बुद्ध से प्रतिपादित धर्म को बौद्ध धर्म, ईसू से प्रतिपादित धर्म को ईसाई धर्म, मुहम्मद से प्रतिपादित धर्म को ~~ईसा~~ मुहम्मडन धर्म, आदि कहते हैं, ~~आदि~~। जब कि इन धर्मों में, नाम मात्र से भी विश्वधर्मत्व की उदारता नहीं दिखाई गई है, तब अन्य बातों में — उसके तत्वों में विश्वोपकारीपने की उदारता सुतरां विचारणीय हो जाती है। ~~परन्तु यह बात नाम मात्र से भी जैन धर्म में नहीं पाई जाती~~ क्योंकि जो धर्म, अपने नाम के पीछे उसके प्रतिपादक के नाम जोड़ने का भी लोभ-संवरण नहीं कर सकता, उसके विश्वोपकारी होने में अभी पूर्ण संदेह है।

परन्तु यह बात, नाम मात्र से भी जैन धर्म में नहीं पाई जाती है। क्योंकि 'जिन' यह किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं है - किन्तु जो भी मनुष्य आत्मा के शत्रु — कर्म, विषय-कषाय, राग-द्वेषादि को जीतने वाला हो, वही जिन माना गया है, और उसके द्वारा प्रतिपादित धर्म को ही 'जैन धर्म' नाम से पुकारा जाता है। यही कारण है कि जैन धर्म के प्रतिपादक भिन्न भिन्न समय में भिन्न भिन्न नाम वाले हुए, पर किसी भी समय उसके प्रतिपादक का नाम, धर्म के नाम के साथ नहीं जोड़ा गया।

जैन धर्म का दूसरा नाम "आर्हत धर्म" भी है, जिसका अर्थ ~~होता है~~ अर्हत ~~से~~ प्रतिपादित धर्म होता है। अर्हत शब्द की उत्पत्ति प्राकृत शब्द अरहो, अरिहो, या अरुहो से हुई है। जिनका कि अर्थ क्रम से — 'अरहो' योग्यता को प्राप्त, जिनकी जीवन नौका इष्ट पद को प्राप्त कर चुकी, 'अरिहो' कर्म शत्रु ओं के नाशक, 'अरुहो' भव-बीजांकुर से रहित, होता है। जिसका कि आशय 'जिन' शब्द से ही मिल जाता है। इस प्रकार जैन धर्म या आर्हत धर्म दोनों भिन्न भिन्न शब्द होते हुए भी एक ही वाच्यार्थ को प्रगट करते हैं। यह जैन धर्म की पहिली विशेषता है, जो अपने साथ अपने प्रतिपादक के नाम नहीं जोड़ने की उदारता दिखाता है।

ऊपर दिखाई गई बात से यह नहीं समझना चाहिए, कि जो यथाजातरूपधारी दिगम्बर वेष धारण नहीं कर सकता, वह जैनधर्म को धारण ही नहीं कर सकता, या उसका पात्र ही नहीं है। यह ठीक है कि उसका अन्तिम ध्येय यथाजातरूपधारी होकर आत्मानुभव करते हुए कैवल्य-प्राप्ति या मुक्ति लाभ करना है। परन्तु साथ ही साथ, जैन धर्म, प्रत्येक प्राणी को, उसकी शक्ति एवं व्यक्ति के योग्य, जैनधर्म धारण करने की बड़ी उदारता के साथ आज्ञा देता है। यहां तक कि, पशु पक्षियों तक के भी उनके अनुरूप उनमें जैनधर्म धारण करने की योग्यता मानता है। जिसके कि सैकड़ों दृष्टान्त जैन शास्त्रों में भरे पड़े हैं।

परन्तु यह उदारता अन्य धर्मों में आपको देखने तक को भी नहीं मिलेगी। अन्य धर्म, अधिक से अधिक यह उदारता मनुष्यों के साथ दिखाते हैं, पर प्राणिमात्र के साथ नहीं। बुद्ध-धर्म, उसे ही अपने धारण करने के योग्य बताता है, जो उसके द्वारा निश्चित किए गए वेष को, धारण करे। इसी प्रकार सनातन या वैदिक धर्म भी।

आज संसार में प्रचलित सर्व धर्मों की छान बीन कर लीजिए, पर वे अधिक से अधिक मनुष्य के लिए ही उपकारक सिद्ध होंगे। पर जैनधर्म के किसी भी अंग की आप परीक्षा कर लीजिए, वह प्राणिमात्र का उपकारक ही सिद्ध होगा। क्योंकि उसका प्रत्येक अंग — विश्व प्रेम एवं जीव मात्र के उपकार का लक्ष्य सामने रख कर ही बनाया गया है। इसी बात को दृष्टि में रखते हुए ही, जैनधर्म की कुछ विशेषताओं का, उसके विश्व प्रेम का दिग्दर्शन मैं अपने इस लेख से, संसार के सामने रख रहा हूं।

" विश्व प्रेम की भावना "

जैन धर्म की यह सबसे पहली ~~आज्ञा~~ भावना है कि –

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम् ।
माध्यस्थभावं विपरीत वृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव ॥

भावना द्वात्रिंशिका, अमितगति आचार्य

" हे देव, मेरा आत्मा सदा ही, प्राणिमात्र में मैत्रीभाव करे, गुणी मनुष्यों में प्रमोद करे, दुखी जनों पर दया करे और विरुद्ध आचरण करनेवालों पर मध्यस्थभाव को धारण करे "। कितनी उच्च भावना है!

(प्राणिमात्र के साथ मैत्रीभाव, (चाहे वह छोटा हो चाहे बड़ा, शत्रु हो या मित्र, स्वामी हो या दास, त्रस हो या स्थावर — कोई भी क्यों न हो) (कि तु जैन धर्म अपने अनुयायियों को आज्ञा देता है, कि) रखो। यदि आज तुम विश्वमात्र के साथ अपनी कमजोरियों से ~~मैत्री~~ या स्वार्थ-भाव से, मैत्री भाव रखने में असमर्थ हो, तो कम से कम प्रति दिन इस बात की भावना अवश्य ~~भाओ~~ करो, कि संसार में कोई तेरा शत्रु नहीं है। यह तेरा भ्रम है कि तू अपनी गलती से दूसरे को अपना शत्रु मान बैठा है। आचार्य वादीभसिंह ने क्या ही अच्छा कहा है —

लोकद्वयाहितोत्पादि हन्त स्वान्तमशान्तिमत् ।
न द्वेक्षि, द्वेक्षि ते मौढ्यादन्यं ~~सं~~ कल्प्य विद्विषम् ॥

अर्थात् दोनों लोकों को बिगाड़ने वाले – इस अशान्ति मय चंचल मन से तो तूं द्वेष नहीं करता है और अपनी मूर्खता से व्यर्थ ही में दूसरों को शत्रु मान कर द्वेष करता है।

बात बिलकुल सत्य है। जब मनुष्य स्वार्थ से अन्धा हो जाता है तब उसे दूसरे के हिताहित का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता है। यही कारण है कि अपने स्वार्थ सिद्धि में जिसको वह विरोधक या बाधक देखता है उसी को वह अपना शत्रु मान लेता है। पर बात कुछ और ही है —

जैन धर्म बताता है कि कोई जीव किसी का कुछ भी हित या अहित नहीं कर सकता है। हां, जब किसी के तीव्र पाप का उदय आता है, तो वह बाहिरी निमित्त कारणों को ही वैसे अनिष्ट का करने वाला मान लेता है। उस समय उसे याद रखना चाहिए, कि यह मनुष्य जो उसकी स्वार्थसिद्धि में बाधक प्रतीत हो रहा है — वह अपराधी नहीं, किन्तु अपराधी स्वयं रही है। उसे इसका पश्चात्ताप करना चाहिए, कि मेरे पापोदय

से उसे भी पाप बन्ध करना पड़ता है, जो मैं पाप में सहायक बनकर अपने भावों को कलुषित करता हूँ। यह उसका अपराध नहीं, किन्तु मेरा ही है।

यदि इस प्रकार मनुष्य प्रतिदिन, या विरोध का अवसर प्राप्त होने पर विचार करे - तो उसे संसार भर के विरोधी रहने पर भी, कभी अशान्ति - या दुःख पैदा नहीं हो सकता है। हमें यह अनुभव भी इस बात को बताता है कि वही वस्तु जो कभी सुखदायक थी, आज वह दुःखदायक कैसे बन गई! इसी प्रकार जो कभी दुःखदायक थी, वह आज सुखदायक कैसे बन गई? जो वस्तु सुखदायक है, उसे सभी काल में सुखदायक ही बनी रहना चाहिए। या जो दुःखदायक है उसे सभी काल में दुःखदायक ही बनी रहना चाहिए। पर ऐसा होता नहीं। इससे अच्छी तरह ज्ञात होता है कि संसार में कोई वस्तु दुःखदायक नहीं, न कोई सुखदायक है। सुख और दुःख को देने वाला अपना पुण्य और पाप का उदय ही है। पुण्योदय पर जो वस्तु सुखदायक प्रतीत होती है - वही पापोदय पर दुःखदायक प्रतीत होने लगती है।

इसलिए हमें सुख में प्रसन्न और दुःख में विषण्ण होने की आवश्यकता ही नहीं है। इस प्रकार जब हमारा आत्मा सुख और दुःख के अनासक्त पर पहुँच जायगा - तब मन में "सत्वेषु मैत्री" की सुन्दर झंकार के साथ साथ दुःखों की टंकार से कभी भी विकार उत्पन्न नहीं होगा। किन्तु विश्व प्रेम के सन्तानन्द के साथ साथ आत्मिक सुख का स्वाद ही मिलेगा।

इसी ही विश्व प्रेम की भावना के बल पर योगी लोग अपने ऊपर आई हुई बड़ी बड़ी विपत्तियों का सामना हँसते हँसते कर लेते हैं। हम उनके आपत्ति जनक कष्ट को देखकर आश्चर्यान्वित एवं दुःखी होते हैं, पर वे आपत्ति सहते हुए भी प्रसन्न एवं सुखी होते हैं। एक अज्ञानी जब कर्ज चुकाते समय दुःखी देखा जाता है, तब वहीं ज्ञानी कर्ज चुकाते समय अत्यन्त प्रसन्न दिखाई देता है। अज्ञानी समझता है, यह कर्ज मांगने वाला यदि भूल जाता या अभी नहीं मांगता तो अच्छा था, तब ज्ञानी विचारता है - बहुत अच्छा हुआ - जो इसने अभी ही कर्ज वसूल कर लिया - अभी तो मेरे पास कर्ज चुकाने की ताकत है जिससे मैं शीघ्र ही कर्ज अदा कर स्वाधीन सुखी बन जाऊँगा। ठीक यही बात हमें कर्मों में भी लगा लेना चाहिए। यही ज्ञानी और अज्ञानी की मनोवृत्ति में भेद है।